

(९१) राग : गौ ड सारंग गोवर्द्धनस्थित्युत्साह हमारी जीवन प्रान आधार ।
वजाधीश वदन श्रीवल्लभ मन वचन कर्म निरधार ॥१॥

करि करुना कलिकाल धोर में निजजन कियौ उद्धार ।
बिन साधन अपने प्रमेय करिकै धृत द्विजवर अवतार ॥२॥

माया तिमिर निवारन को प्रगट भए स्त्रुति सार ।
'गोविंद' सर्वस श्रीवल्लभ अगनित गुन जु अपार ॥३॥

(९२) राग : नटनायन तल्लीलाप्रेममूरति श्रीवल्लभ मन भाए ।
तजि बैकुंठ परमानंद निजजन उद्भरन हेतु करना करि कृपानिधान अनीतल आए ॥१॥
सिव विरंचि सचीपति देव कोटे तैतीसों सुर नर मुनि करि समाधि हार मानि पार कोउ न पाए ।
सुक सनकादिक नारद व्यास जु करत बखान सेस वदन सहस्र सदा सृजस गुन गए ॥२॥
सुखद सुबोधिनी सुनाइ स्ववचनामृत पान कराइ गोकुलपति दिए बताइ श्रीलछमनसूनु ।
श्रीविठ्ठल पदरज 'गोविंद' कौ सर्वस है श्रीवल्लभ की जयजय करि चढ़ि विमान बरसत प्रसून ॥३॥

(९३) राग : गौरी यज्ञभोक्ता दिनमणि उदयौ भूतल भयौ प्रकास ।
जयजयकार भयौ विभूतन में स्त्रुतिपथ भयौ विकास ॥१॥
देव कोटे तैतीसौ देखत चढ़ि विमान छाया आकास ।
दिवि दुंदुभी बजावन लागे सुर नर मुनि पूरी आस ॥२॥
मायावादी मत मयंद मन जग्यपुरुष देखि उपज्यो त्रास ।
यह महिमा कोऊ नहि जानत गावत विमल जस 'गोविंद' ॥३॥

(९४) राग : वसंत यज्ञकर्ता बहुत प्रगटे श्रीलक्ष्मण के गेह ।
श्रीहरि प्रगट किए सुख मूरति सन्मनुष्याकृति धरि देह ॥१॥
सो स्वरूप श्रीवल्लभ कौ कोउ जन पार न पावै ।
प्राकृत रूप देखि भ्रम उपजत असुरन मोह उपजावै ॥२॥
यह महिमा है निगम अगोचर काहुके हदै न पावै ।
श्रीविठ्ठल करुना कटाच्छ बल 'गोविंद' जन जस गावै ॥३॥

(९५) राग : वसंत चतुर्वर्गविशारद प्रभु स्वजन प्रतिपाल ।
तिहारौ नाम उच्चार किए तैं मिटत कोटे जंजार ॥१॥
श्रीभागवतप्रतिपदमणिवरभावाशुभूषिता मूर्ति ।
तिहारे चरन सरोज रज तैं होत स्त्रुतिपथ स्फूर्ति ॥२॥
तुमसे प्रभु सुने नहीं कबहुं देखे आगे नाहीं ।
ब्रह्मसंबंध कराइ सौंपत है ग्रहि दृढ़ करि बांछि ॥३॥
तिहारी सिगरी बातन मोतै कही नाहिंन जात ।
सेवा कथा करत अरु 'गोविंद' जन गुन गात ॥४॥

(९६) राग : पंचम सत्यप्रतिज्ञ प्रतिज्ञा पारौ निःसाधन हौं रंक तिहारौ ।
व्रजपति वदनाजल बिन कलि में नाहिंन और कोउ रखवारौ ॥१॥
नोद पसारि करत हौं विनती मन वचन कर्म करिकै निधारी ।
करौ करुना करुनानिधान मोकों कलिभ्रजं तैं भय उपजत भारौ ॥२॥
अति आवर्त सहित दुस्तर भवसागर पदनोंका दै तारौ ।
श्रीविठ्ठल पदरज 'गोविंद' कहै तिहारे सरन बिन नाहिंन निस्तारौ ॥३॥

(९७) राग : धनाश्री

त्रिगुणातीत जीवन धन प्राण ।
तीनि लोक में व्यापि रह्यो जस सुर नर मुनि करै गान ॥१॥
दैवीजन कौ सर्वस श्रीमदवल्लभ इस बिनु कोउ न आन ।
षट्गुन पूरन द्विजवर वपु धरि निजजन राखौ मान ॥२॥
श्रीहरि वदनानल आनंदमय देत अभयपद दान ।
कहत 'गोविंद' उपाधि सबै तजि सुखद सुजस करौ पान ॥३॥

(९८) राग : कल्याण

नयविशारद कौ विमल जस भावै ।
अपनी बुद्धि अनुसार कहत सब कोऊ पार न पावै ॥१॥
सिव विरवि मोहित सुर नर मुनि सब मिलि कहुं कहुं कहुक बतावै ।
श्रीहरिवदनानल महिमा गुन सेस सहस्र मुख गावै ॥२॥
श्रीवल्लभ भानु अवनीतल उदयो माया तिमिर निबिड सु नसावै ।
रंक 'गोविंद' श्रीवल्लभ पद बिन अनत न सीस नमावै ॥३॥

(९९) राग : सारंग

स्वकीर्तिवर्द्धन की कीर्ति जग में फैल रही ।
आनंद रूप करत ताही कौ जिनके हृदय आइ छही ॥१॥
हरि बस होय सदा तिनिही के जो यह निसिदिन गावै ।
हरिलीलारस रोम रोम में तिनिही के में आवै ॥२॥
तिनिके दरसन अरु नाम मात्र तैं कोटि दुष्कृत भाजै ।
कहत 'गोविंद' ऐसेन की संगति तैं निर्भय होइ नित गाजै ॥३॥

(१००) राग : विभास

तत्त्वसूत्रभाष्यप्रवर्तक कौ अति अद्भूत सुजस विमल तीनि भुवन व्याप्यो ।
करि करुना कलिजुग में द्विजवर अवतार धर्यो मायानमत खंडन करि ब्रह्मवाद व्याप्यो ॥१॥
तिहारी कला अंस प्रगटे वामन बलिराज छल्यो चरन एक कारि त्रिविक्रम तीन भवन भाष्यो ।
स्त्रवन सुनत सुरसुंदरी चाँदे विमान छायो नभ देखि आकास अति उजास पंचम भाष्यो ॥२॥
तिहारे चरन विमुख जीव नैकु नाहीं धरत धीर असुरन तैं सब वृथा जन्म क्यो राखै ।
अजहू कहू चेतन नहीं भटकत है निसिवासर संपाति के हेत मन करत है विनाश ॥३॥
काम क्रोध लोभ मोह मत्सर करि साधु संग छाँडे असदात्ताप असुरमति जगत सत्ताप्यो ।
सत्संगति करकै श्रीविट्ठल पदररोज रज जगत में व्यापि रह्यो 'गोविंद' जन सीस धार नाल्यो ॥४॥

(१०१) राग : सामेरी

मायावादाख्यतूलाग्नि तुम काले में भूतल दरस दीनों ।
ऐसी आगै नहीं भई बहुरि यह विधि सर्वाहे प्रगट अब कीनों ॥१॥
जौ जौ बात सुनी नाहें कबहू सो तुम्हारी कृपाबल तैं हम चीनों ।
यह हारद काहू जान्यो जिन मान्यो सो रहत रसभीनों ॥२॥
काले से सुनत सब बातियां तातैं भार आवत मेरी छतियां ।
श्रीविठ्ठल पदरज 'गोविंद' कौ दीनों प्रमेयबल यह सब भतियां ॥३॥

(१०२) राग : पूर्वी

ब्रह्मवादनिरूपक पदरज पावन कौ ध्यान धरत दिनरात ।
दरस परस हौ तिहारो चाहत और कहू नहीं तुम बिन मोपै सुहात ॥१॥
मन मेरो अटक्यो इनि बाताने खानपान अब कियो न जात ।
लगन लागे रही श्रीवल्लभ सौ कहत न काहू सौ मो मन बहुत लजात ॥२॥
अपने मन तैं मेरे मन की इच्छा तुम तैं निबहात ।
'गोविंद' तिहारो सुजस विमल अति प्रफुलित मन गुन गावत न अघात ॥३॥

(१०३) राग : मलार

अप्राकृताखिलाकल्पभूषित मो पर कृपा करौ ।
कोटिक जनम भए भटकत भटकत कारज कछु न सरौ ॥१॥
अब कहीं जु महानिधि पाई बूडत बांढ पकरौ ।
जबै सुधि होत श्रीवल्लभ की तब बिसरत दुःख सगरौ ॥२॥
ब्रह्मवाद हारद जाने बिनु करत असुर झगरौ ।
'गोविंद' प्रभु कलि में उद्धरत है मति साधन करि जु गरौ ॥३॥

(१०४) राग : विहागरौ

सहजस्मित श्रीवल्लभ वल्लभ मोकौ अति ।
और कछु समुझत नाहिं सुभग मूरति सौ लागि रही रति ॥१॥
दैवी सृष्टि उद्धारन कारन वहुनै प्रगटे अवनीतल व्रजपति ।
तिहारे चरनसरोरुह तजिकै नाहिं चाहत कबहुं और गति ॥२॥
मो मन लगन लागी रहै आधी निमिष नहीं होत है विस्मृति ।
विनती सुनहु कृपानिधि मेरी इनि नैननि निरखौ नित्यप्रति ॥३॥
रैनिदिनां रसना कहि जीवित हौं कर जोरि करौं विनती ।
'गोविंद' जन कौ तन मन धन जीवन सर्वसु श्रीमद्वल्लभ महामति ॥४॥

(१०५) राग : धनाश्री

त्रिलोकीभूषण प्राण आधार ।
दैवी जीव उद्धारन कारन धृत द्विजवर अवतार ॥१॥
श्रुति स्मृति सास्त्र पुरान के कोऊ न पावत पार ।
श्रीहरे वदन वनिह आनंदमय श्रीवल्लभ निरधार ॥२॥
श्रीभागवत सुधा समुद्र मथि कीनों भावित प्रचार ।
करि सीखिवे सेवा निजजन कौ बताइ दिए श्रुतिसार ॥३॥
करुना करि कलि में करुनानिधि श्रीवल्लभ महा उदार ।
जो अवनीतल दरस न देते तौ वसुधा बूडत भार ॥४॥
साधन कोटि करौ जिन कोऊ होइ नहीं उद्धार ।
कहत 'गोविंद' श्रीवल्लभ सुमिरे बिन होत नहीं निस्तार ॥५॥

(१०६) राग : केदारौ

भूमिभाग्य कलि में जु दरस दियो लक्ष्मण अमृत उदधि द्विजराज ।
निविड तिमिर मायावादिनि कौ वचन कीरतन गयो भाज ॥१॥
जयजयकार भयो त्रिभूवन में सुर नर मुनि के जुरे समाज ।
अब मति करौ सोच कोउ मन में पुष्टिभक्ति दृढ बांधि पाज ॥२॥
निःसाधन तिहारे सरन भयो रंक जानि अब राखौ लाज ।
सदा बिराजौ सीस 'गोविंद' के श्रीवल्लभ विदुषवृंद सिरताज ॥३॥

(१०७) राग : कान्हरी

सहजसुंदर सुभग मूरति मेरे मन बसौ ।
अन्य आलाप तै वृथा आयुष होत अवगुन सब बिसारि मम दृग तै मति खसौ ॥१॥
सुखसेव्य स्त्रवन सुनि तिहारे आयो सरन अपने जिय जानिकै मम हृदय में घसो ।
द्विविध लज्जा छांडि कहत 'गोविंद' जन देखि मोकौ वल्लभपद विमुख सब हंसौ ॥३॥

(१०८) राग : गौ ड सारंग अशेषभक्तसम्प्रार्थ्यवरणाब्जरजोधन ।

जो है पुष्टिसृष्टि कौ सर्वस लागि रहौ तासौ मो मन ॥१॥

जो अति दुर्लभ सुर नर मुनिन कौ सब मांगत हैं रैनदिन ।

जौ लौ कृपा न होइ तिहारी तौलौ दहत सबै तन ॥२॥

जब जान्यो श्रीवल्लभ महिमा तब सब तज्यो श्रीवल्लभ बिन ।

सो श्रीवल्लभ श्रीविठ्ठल करुना तै पायौ 'गोविंद' जन ॥३॥



विशेष :- "भक्तेच्छापूरक" (पद संख्या ८१) नाम का एक पद और भी प्राप्त है, जो इस प्रकार है

(८१/२) राग : सारंग

भक्तेच्छापूरक नाम श्रीवल्लभ ।

तीनि लोक में सुर नर मुनि कौ पदरज अति दुर्लभ ॥१॥

बिन साधन कलिकाल घोर में श्रीवल्लभ महा उदार ।

निजपद नोका दै स्वकीयन कौ भवसिंधु उतारे पार ॥२॥

सेस सारदा कहाँलौ बरनै अगनित गुन जु अपार ।

प्रगटे व्रजपति वन्हि 'गोविंद' दास के प्रान अधार ॥३॥

राग : बिलावल

आनन्दनिधि के शतअष्टोत्तर नामोच्चार करौ धरि प्रेम ।

श्रद्धाविशुद्धि बुद्धि सौ पढौ अनुदित तौ उपजै वन्हि पदप्रेम ॥१॥

तदैकमन व्है जपो गुप्त अति पावौ सिद्धि अरु मुवित ।

बिन साधन जु महाफल पैयत निःसन्देह होइ आसवित ॥२॥

तदप्राप्तौ वृथा ही मोक्षफल तदप्राप्तौ हि गतार्थता ।

अनायास कर तै साधन त्यजत 'सर्वोत्तम' तैं निर्भयता ॥३॥

श्रीमदग्निकुमार श्रीविठ्ठल प्रगट किए दैवीजन काज ।

कृष्णरसार्थी जपौ कहै 'गोविन्द' हटै बसे श्रीवल्लभ महाराज ॥४॥



राग : काफी

श्रीसर्वोत्तम जप नित्य करना हो ।

सकल शास्त्र कौ सार यही है, त्रिविध ताप सब अध हरना हो ॥१॥

पुष्टि पदारथ याही तै पैयत, याही तै भवसागर तरना हो ।

रंगीले 'प्रीकम' जाऊं बलिहारी, कालदंड से ना डरना हो ॥२॥



करिये श्रीसर्वोत्तम रसपान ।

प्रशंसा करि सकै कौ न कवि ऐसौ, श्रीमुख करत बखान ॥१॥

अतिसय करुना करि या कलि में, दियो दैवी जीवन को दान ।

एक एक अक्षर है अधरामृत, गुप्त रहस्य गुनगान ॥२॥

अर्द्ध निमेष विलम्ब नहिं करिये, रैनदेवस आलौ जाम ।

'रसिक प्रीतम' जाके रंग रंग्यो, सोहै भक्त निदान ॥३॥

सर्वोत्तम - दोहा

श्रीद्वारकेशजी (धन्नुजी)
(गिरिराजजी) कृत

श्रीवल्लभ श्रीपंचद्युत, स्वबल विशद यह ग्रंथ ।
अन्य ग्रंथ प्रतिनाम बल, सर्वोत्तम यह पंथ ॥१॥
प्राकृतधर्म निवृत्त करि, अप्राकृतवपु धर्म ।
निगम कथित अति शुद्ध ये, श्रुति साकृति निज मर्म ॥२॥
तमश्छन्न दृग विदुष के, यह कलिकाल प्रकास ।
भागवत रस गोचर नहीं, भुवि में होइ विकास ॥३॥
परम दया निज भक्त पर, निज रस प्रगटन काज ।
हरिबानी निज वदन प्रति, निज जन करी समाज ॥४॥
सवास्य उचित दुर्बोध है, जैसे होइ सुबोध ।
अष्टोत्तरशत नाम में, प्रतिबन्धक अघ शोध ॥५॥
पुष्टिभक्ति ऋषि अग्निसुत, जगती नाम कौ छन्द ।
श्रीकृष्णस्य सु देवता, करुणा बीज अमन्द ॥६॥
भक्तिविषै प्रतिबंध सब, नाश करन विनियोग ।
कृष्णाधरामृत त्रिविध, निश्चय सिद्धि विभोग ॥७॥
प्रथम नाम आनन्द है, पूर्वदल संयोग ।
इस दल विश कलितानुभव, धर्म द्विदल प्रयोग ॥८॥
परमानन्द वियोग है, विप्रयोग उद्बुद्ध ।
संवलित अनुभव द्विदल में, रस शृंगार प्रबुद्ध ॥९॥
द्विदल श्रीकृष्णस्य है, जो श्रीकृष्ण अनूप ।
आदि मध्य अवसान रस, विहरत एक स्वरूप ॥१०॥
सदाकृपानिधि दैवी पर, प्रतिक्रिया उठत तरंग ।
निकट देश कौ भग्न करि, दुरित असुर बहिरंग ॥११॥
दैवीन के उद्धार प्रति, अंतःकरण प्रयत्न ।
जागरूक इच्छा प्रबल, ज्यों समुद्र तैं रत्न ॥१२॥
स्वस्मृतिमात्र प्रकाश करि, आरति प्रगट समाइ ।
जैसे वन में वेणु कृत, नाद द्वारा आइ ॥१३॥
गूथ अर्थ श्रीभागवत, शास्त्र आदि तैं सप्त ।
करत बोधरस सोध करि, आरति करि जे तप्त ॥१४॥

स्थापक ये साकार के, ब्रह्मवाद है एक ।
असद्वाद सब शून्य है, ज्यो पावस के भेक ॥१५॥
जो पारंगत वेद के, सो जानत यह भेद ।
खंडज्ञान प्रमान नहीं, क्यों संशय उच्छेद ॥१६॥
गई अविधा जीव की, ब्रह्म भयो अविवाद ।
विधा पर्व तब उर रह्यो, द्वेषित मायावाद ॥१७॥
कुवाद निरास करि, चौ प्रमाण तैं अस्त ।
सुत्र गीता मिलित, श्रीभागवत प्रशस्त ॥१८॥
भक्तिमार्ग भुवि कमल है, मार्तण्ड यह एक ।
अब्ज प्रकाशक भानु है, करत कुमुद व्यतिरेक ॥१९॥
स्त्री शुद्रादि समर्थ नहीं, किन्हूँ कौ उद्धार ।
ब्रह्म क्षत्रिय, भक्ति करि, क्यों न होइ निस्तार ॥२०॥
अंगीकृत सामर्थ्य तैं, प्रिय लागत गोपीश ।
ज्यों श्रीयमुना संग तैं, गंगा प्रति वज ईश ॥२१॥
अंगीकृत दैवी नियत, आसुरी प्रति मर्याद ।
देह भाव बाधक नहीं, आसुर जीव विषाद ॥२२॥
जो मांगे सो देह तब, लक्षण करुणा सुवत ।
बहुत देत मांगे बिना, मही दया संवत ॥२३॥
विभु व्यापक निज भक्त उस, जैसी स्वहृदय भाव ।
सो निज भाव प्रकाश करि, परम कृपाल स्वभाव ॥२४॥
देत अदेय विदग्ध तैं, सुधा सु सर्वाभोग ।
वेणुनाद बिन शब्द गुण, वेणुगीत उपयोग ॥२५॥
भगवद्भोग्य सुधा अपर, महा उदार चरित्र ।
देवभोग्य कौ दान तौ, है कैमुत्य न चित्र ॥२६॥
प्राकृत अनुकृत ब्याज करि, आसुर मानव मोह ।
श्रीमद् द्विज अवतार में, उद्धित दैवी जोइ ॥२७॥
वैश्वानर चित धर्म मुख, विविध अलौकिक बन्हि ।
दावानल पान करि उष्ण हिम, ताप निवारक अग्नि ॥२८॥

वल्लभ त्रिय आनंद है, श्रीवल्लभ उपनाम ।
 स्वरति कृष्ण श्रीकृष्ण तब, निज प्रति सुन्दर श्याम ॥२९॥
 शुद्ध सत्त्व सद्रूप है, विद्वानंद सत् धर्म ।
 सत् वित् आनंद कृष्ण पति, व्युत्क्रम संपुट मर्म ॥३०॥
 सत् सौ तत्त्व विशुद्ध है, हरि प्राकट्य स्थान ।
 निश्चय हितकृत सिद्ध है, ऐसे कृपानिधान ॥३१॥
 कृष्णप्रेम सेवा करत, सेवक शिक्षित होत ।
 ज्यो अंगुलि अक्षर लिखै, बालक कौ उद्योत ॥३२॥
 मूरति बुद्धि निवृत्त करि, निखिल देत जो इष्ट ।
 प्रतिबंधक माया टरै, सो प्रसाद उत्तिष्ठ ॥३३॥
 सर्वलक्षण विद्या कला, पूरण गुण सम्पन्न ।
 जाकौ जैसौ उचित फल, तैसो देत प्रसन्न ॥३४॥
 ज्ञान देत श्रीकृष्ण कौ, भक्ति सहित जो भाव ।
 त्रिविध अलौ किक गुण कहै, तम रज सत्त्व सुभाव ॥३५॥
 गुरु जब दक्षिण कर्ण में, मंत्र करत उपदेश ।
 बहिरंतर पूरण भयो, सिद्ध भगवदादेश ॥३६॥
 दान देत तउ पूर्ण है, तुंदिलकर स्वानंद ।
 ज्यों जल रश्मि ग्रहण तैं, सागर विसद अमंद ॥३७॥
 पद्म प्रफुलित दल सदृश, आयत लोचन कोर ।
 अंतःस्थिति जो गुप्त रस, प्रगट करत रस जोर ॥३८॥
 कृपादृष्टि की वृष्टि करि, हर्षित दासी दास ।
 तिनको प्रिय लागत सकल, दृढ उपजत विश्वास ॥३९॥
 पतिलक्षण रक्षण नियत, कालादिक भय जात ।
 आप सबन तैं भय रहित, पतिनिश्चय विख्यात ॥४०॥
 रोषदृष्टि के पात करि, भक्तद्वेषी दाह ।
 भगवदीय कामादि सब, स्थापन करत सराह ॥४१॥
 पुष्टि पुष्टि सेवा करत, शुद्ध भक्ति जब पुष्टि ।
 सेया साधन मानसी, फलरूपा संतुष्टि ॥४२॥
 सुख सेवन तनु वित्तजा, पूर्वदल संयोग ।
 एकादस संलाप सब, इंद्रिय हरिकृत भोग ॥४३॥
 दुःख अधिक आराध्य है, फल मानसी उपयोग ।
 चक्षुरुवि पंचत्व लौ, ये दस दसा वियोग ॥४४॥

दुर्लभ जिनको लाभ है, ऐसे अंधि सरोज ।
 अन्य तजौ येही भजौ, ऋषि लखि त्यागित मनोज ॥४५॥
 उग्र प्रकृष्ट प्रताप है, सबको लभ्य अशक्त ।
 भक्ति वृद्धि जाकौ भई, शीतल सेवन शक्त ॥४६॥
 वाक् अमृत पूरित करत, सेवक रसिक अशेष ।
 असमर्पित तजि विषय मति, अन्याश्रयण विशेष ॥४७॥
 श्रीभागवतसुधा जलाधि, मथन विचार समर्थ ।
 श्रुतिरूपा वर्णन करत, ताकौ वितरण अर्थ ॥४८॥
 सुधासिंधु श्रीभागवत, अमृत सार कौ सार ।
 रास व्रजस्त्रीभाव सब, पूरित तपु निधार ॥४९॥
 सान्निध्य जो जन होत है, देत प्रेम श्रीकृष्ण ।
 तब निरोध फल त्यजन लौ, पूरण सब ही तृष्ण ॥५०॥
 तब विशेष गति देत है, चहुँदिसि चित एकन ।
 यह विभुवत कौ रूप है, कृष्णभाव सर्वत्र ॥५१॥
 प्रथम प्रमाण प्रमेय अरु, साधन फल रस रास ।
 शुक बरनत लीला सकल, रास प्रकाश विलास ॥५२॥
 कृपादृष्टि जाकौ मिलत, कृपापात्र वह दास ।
 प्रकरण फल की निज कथा, ता प्रति कहत प्रकाश ॥५३॥
 विरह एक अनुभव करन, त्याग करत उपदेश ।
 अंतर्हित तब चंद्र लखि, गोपीगीत सुदेश ॥५४॥
 भजन भेद त्रिय प्रश्न कहि, न भजे भजिए द्योय ।
 भजन परस्पर गौण है, दोई मुख्य है हेय ॥५५॥
 आराधन सो कर्मपथ, यह उत्तम सत्कर्म ।
 केशवथन पुष्पावृत्य, रमण वरण कौ मर्म ॥५६॥
 यागादिक निष्काम विधि, करत सकल भक्ति अंग ।
 यह उपदेश अशेष जन, श्रुति स्मृति भक्ति प्रसंग ॥५७॥
 याग करत निष्काम तैं, होत मोक्ष अति स्वच्छ ।
 आपुन पूर्णानंद है, यहि इच्छा यह तृच्छ ॥५८॥
 याग सकाम विमान फल, अमृत भोग यह स्वर्ग ।
 काम पूर्ण जिनको सबै, कहा स्वर्ग अपवर्ग ॥५९॥
 निगम वाक्पति आप है, उभय स्वर्गफल हाथ ।
 जाकी जैसी कामना, पूरत अतिकृत नाथ ॥६०॥

जिनको बोध विशेष है, तिनहीं के ये ईस ।
 करन अकरन अन्यथाकरन, नियत जगदीस ॥६१॥
 ववता नाम सहस्र के, कृष्ण नाम सब मूल ।
 श्रीभागवत प्रसास करि, स्मरण सकल अनुकूल ॥६२॥
 स्मरण सिद्ध जिनको भयो, शुद्ध सत्य उपयुक्त ।
 स्वस्थिति नियत निवास उर, शेष भाव संयुक्त ॥६३॥
 शुद्ध भवित विस्तार को, नाना वाक्य निरुक्ति ।
 वाणी मात्र प्रमाण है, मिलत भवित की युक्ति ॥६४॥
 स्वार्थ उज्झित प्राणसुख, मद क्रम वचन प्रिय ।
 सुदृढ़ अलौ किक भाव करि, सेवत सदा स्वकीय ॥६५॥
 कर्म गौण सेवा अधिक, चित्त शुद्धि किहि हेत ।
 आप कर्म करि दास को, चित्तशुद्धिफल देत ॥६६॥
 स्वकृत कर्मफल स्वीय हित, सर्वशक्ति प्रतिपाल ।
 राजरुद्ध मगधेश त्यों, तिन प्रति कृष्ण कृपाल ॥६७॥
 आज्ञा लौं जग दरस दै, जीव करत उद्धार ।
 आगे भवित प्रसार को, बंस कियो विस्तार ॥६८॥
 विद्यादिक कृत बंस में, मुख्य बंस पितृ रीति ।
 आत्मसृष्टि वैषम्य नहि, हरि प्रणीत निज प्रीति ॥६९॥
 शेष भाव विग्रह हृदय, भावुक फल तादात्म्य ।
 जन उद्धारण अशेष सुत, वंश स्थापि माहात्म्य ॥७०॥
 समय जो गर्व निवृत्त करि, स्वकुल सर्व निष्कलंक ।
 आत्मसात् श्रीकृष्णकृत, ताते भाव निःशंक ॥७१॥
 पति कौ व्रत जिनको नियत, तिनके पति निर्धार ।
 वातक अरु ब्रह्मास्त्रवत् यह प्रण निश्चय धार ॥७२॥
 द्वै सुख यह परलोक कौ, दान दैन कौ नेम ।
 ज्यों अनन्य चिंतन करै, देत योग अरु क्षेम ॥७३॥
 महदाशय अनुभव महत्, यातें हृदय निगूढ ।
 ऐसे प्रभु के सरन नहि, ते जग उपजे मूढ ॥७४॥
 जे अनन्य निज भवत है, तिन प्रति आसय दान ।
 ज्ञापित करत प्रसन्न रहै, भगवदीय सम्मान ॥७५॥
 उपासनादिक पंथ में, सरन कहे अति मोह ।
 सो निवारि निज गति दई, कर्म धर्म संदोह ॥७६॥

दानादिक साधन किए, ज्यों उपजत है भवित ।
 सगुन इवयासी भेद में, सरन निषेध प्रसवित ॥७७॥
 पृथक भाव गुन तें पृथक, पृथक सरन उपदेश ।
 निर्गुन भवित निकेत है, दुर्लभ लाभ व्रजेश ॥७८॥
 हारद जो श्रीकृष्ण को, सो जानत है आप ।
 पृथक शरण उपदेश दै, पुष्टिभवित दृढ़ छाप ॥७९॥
 लीला कुंज निकुंज की, प्रतिक्रिा प्रेरित भाव ।
 पूर्वदल संयोग रस, सन्निधान अनुभाव पवन
 भोग अनौ सर के विषै, उत्तरदल उपयोग ।
 कहत कथा रसमग्न रहै, दरसन स्त्रवन वियोग ॥८१॥
 बाहर अनुसंधान नहि, अंतः प्रेम समृद्धि ।
 भ्रमरगीत आश्रम तुरीय, विप्रयोग रसदाहि ॥८२॥
 व्रजस्त्रीन कौ प्रिय सदा, श्रीवल्लभ प्रिय नाम ।
 लोकव्यापि वैकुंठ प्रिय, यातै प्रिय है वाम ॥८३॥
 व्रज की स्थिति प्रिय लगत है, त्यों प्रिय लगत व्रजीय ।
 उभय अलौकिक प्रीति है, उभय अलौकिक स्वीय ॥८४॥
 लीला पुष्टि प्रकास करि, परम अनुग्रह पोष ।
 सर्वानंद अलभ्य नहि, कृपानंद संतोष ॥८५॥
 जो लीला भावन करत, सो वपु धरै प्रकास ।
 रहसि परम प्रिय लगत है, अनुभव जब अवकास ॥८६॥
 अधिकृत इच्छा भवत की, पूरत कृपा निधान ।
 सर्वेश्वर सर्वात्म ज्यों, जन इच्छा निज मान ॥८७॥
 पुष्टिभवित उपदेस बिन, यह लीला अज्ञात ।
 ज्यों गायत्री मंत्र बिन, द्विज प्रति वेद लिपात ॥८८॥
 आति मोहन मन कौ हरन, ऐसे निज जन साथ ।
 लीलावेश रसज्ञ करि, पुष्टिभवत के साथ ॥८९॥
 सर्व असवत अभवत सौ, अनुभव नहीं विवेक ।
 पंकज मधु मधुकर ग्रहत, पंक भस्वत है भेक ॥९०॥
 भवत मात्र आसवत ते, मुख्य भवत यह छाप ।
 भू समुद्र कुंभज वियत्, हरिपद जन हृद थाप ॥९१॥
 पातित देह पावन करत, जिनको गृह प्रतिबंध ।
 गायत्री श्रुति पंथ में, भवित ब्रह्मसंबध ॥९२॥

स्वयं गान तै हृदयकमल, प्रफुलित निज सुस्थान ।
 ज्यों श्रीजमुनारेनु पर, रस उत्तरीय प्रधान ॥९३॥
 अमृतसिधु रसलहरि तै, अन्य तुच्छ रसमग्न ।
 ज्यों मिश्री के स्वाद तै, गुड की राव विभिन्न ॥९४॥
 यह रस पर उत्कृष्ट है, अन्य कुरस जगफंद ।
 मुवित ब्रह्मानंद तै, उद्धत भजनानंद ॥९५॥
 लीलारस पीयूष तै, आर्द्र आर्द्र जन कीन ।
 शुष्क वस्त्र जल सहित सौ, संग लगै तल्लीन ॥९६॥
 श्रीगोवर्द्धनवर्य जन, स्थिति कौ अति उत्साह ।
 निकट पुलिंदी भवत करि, सर्वगतादिप्रवाह ॥९७॥
 लीला गिरि उर्द्धरन सुनि, भक्त जगत ऋण सप्त ।
 आत्मयोग अनुभाव तै, प्रेम पूर्ति गति तप्त ॥९८॥
 यज्ञभोग हरि सैलबलि, भोजन मुख को धर्म ।
 इन्द्रिय द्वै इक गोल मधि, रस चित बानी कर्म ॥९९॥
 पूजा गिरि की यज्ञ कृति, मुख तै आज्ञा देत ।
 यज्ञभोग पहिलै कह्यो, इन्द्रवृष्टि प्रति हेत ॥१००॥
 चतुर्वर्ग पुरुषार्थ दै, दास्य धर्म हरि अर्थ ।
 कामदिदक्षा मोक्ष सो, चित श्रीकृष्ण समर्थ ॥१०१॥
 जागरुक इच्छा प्रबल, तातें सत्यप्रतिज्ञ ।
 पुष्टि चतुर्विध देत है, इंगित कृष्ण अभिज्ञ ॥१०२॥
 सत्यप्रतिज्ञ करत यों, निश्चय त्रिगुनातीत ।
 प्रकृतिजन्य रज सत्त्व तम, ते प्राकृत की रीत ॥१०३॥
 सुनय विशारद सहज गुन, दैवी जीव के भाग ।
 गोकुलेश लीला सकल, स्थापित निज अनुराग ॥१०४॥
 कीर्तिवर्द्धन शुद्ध निज, कृष्ण शुद्ध त्यों भवत ।
 सब तैं मारग शुद्ध यह, शुद्ध भगवदासवित ॥१०५॥
 तत्त्वसुत्र के भाष्य तै, कीर्ति वृद्धि विशुद्ध ।
 साकृति ब्रह्म प्रपंच नित, अणु है जीव प्रबुद्ध ॥१०६॥
 व्यापक जीव असत्य जग, ब्रह्म निराकृत एक ।
 मायावाद वितल्प प्रति, अग्निरूप परछेक ॥१०७॥
 ब्रह्मवाद साकार है, शून्य वाद सब और ।
 ध्यान शून्य कौ करत है, जाकौ कहुं नहि ठौर ॥१०८॥

अप्राकृत आभरण सब, प्रतिपद श्रीभागवत ।
 षट्गुण मय ऐश्वर्य यह, उद्धारक उद्योत ॥१०९॥
 सहज स्मीत सो वीर्य है, दैवी की नहि मोह ।
 असुर मोह में मग्न है, प्रकट पराक्रम जोह ॥११०॥
 भूषण यश दूषण रहित, स्वजन समग्र त्रिलोक ।
 पुष्पमाल की गंध ज्यों, हरियश प्रसारि विलोक ॥१११॥
 भूमिभाग्य श्रीधर्म है, सेवक तादृश रूप ।
 गुण वैषम्य स्वभाव है, गुणसम प्रकृति अनूप ॥११२॥
 सुन्दर सहज स्वरूप है, नहि मायाकृत लेस ।
 ज्ञानसुद्ध तब जानिए, नित्य भगवदावेश ॥११३॥
 सर्वभक्तसंप्राप्त्य है, वरनाब्जरज भाग्य ।
 सर्वनिवेदन प्रीतीकर, सेवा दृढ वैराग्य ॥११४॥
 कहै विसद आनंदनिधि, अष्टोत्तरशत नाम ।
 श्रद्धा बुद्धि विशुद्ध करि, अनुदिन पढ़ि विस्त्राम ॥११५॥
 हरत मृत्यु शत आयु कौ, टारत नाम कुदोष ।
 द्वयानंद षट्गुण सहित, अष्टोत्तरशत तोष ॥११६॥
 उक्त सिद्धि निर्धार यों, वदत अग्निस्त सत्य ।
 कृपादृष्टि कारन नियत, दारा कहा अपत्य ॥११७॥
 उक्त सिद्धि की प्राप्ति बिनु, मुवित भई तौ त्यर्थ ।
 उक्त सिद्धि निश्चय भई, इच्छा मुक्त निरर्थ ॥११८॥
 निज सर्वोत्तम ग्रंथ में, सदानंद रस लक्ष्य ।
 आवै तब लौ पाठ करि, फिर जब भावुक अक्ष ॥११९॥
 नील जलद सुस्थिर लखै, स्थिर दामिनि मिलि लहोत ।
 स्थिरता मन की होइ, जब स्थिर सुभाग्य उद्योत ॥१२०॥
 पुरुषोत्तमलीलाजलधि, सुस्थित विग्रह शेष ।
 प्रचुर भाव तै दान निज, "द्वारकेश" संदेश ॥१२१॥



સર્વોત્તમ - દ્યૌલ

શ્રીવ્રજભૂષણ(વૃત્તીય ગૃહ) કૃત

ભલે પ્રકટ્યા શ્રીવલ્લભદેવ, શ્રીપુરુષોત્તમ ભૂતલ ફરીજી ।
 નહીં પ્રાકૃત ધર્મનો લેશ, અપ્રાકૃત નિજ વપુ ધરીજી ॥૧॥
 કરે નિગમનિરૂપણ એમ, તે સાકારની સ્તુતી કરીજી ।
 મહા કલિકાલાદિક દોષ, પંડિતની દષ્ટિ તિમિર ભરીજી ॥૨॥
 મહિમા નવ જાણે જેહ, તે કહીયે ખરા સુર અરીજી ।
 વહાલો દયા કરી મુખરૂપ, નિજ લીલા પ્રકટ કરીજી ॥૩॥
 જેની વાણી અતિ દુર્બોધ, થાય સુબોધ જેણે કરીજી ।
 જેના અધોત્તરશતનામ, તે કહીયે મહા અઘ હરીજી ॥૪॥
 જેના ઋષીવર અગ્નિકુમાર, જગતી છંદ નામે ધરીજી ।
 શ્રીકૃષ્ણકમલ મુખદેવ, બીજ દષ્ટિ કરુણા ભરીજી ॥૫॥
 જેની ભક્તિ માં અંતરાય, તે નાશન પ્રયોજન સહીજી ।
 આપે અધરામૃતની સિદ્ધિ, તે મધ્યે નિશ્ચય કરીજી ॥૬॥

ઢાલ

વહાલો આનન્દ પરમાનન્દ કહેવાય ।
 શ્રીકૃષ્ણકમલ મુખ કૃપાનિધિ થાય ॥૭॥
 વહાલો દેવી ઉદ્ધારણ પ્રયત્ન ઉપાય ।
 જેના સ્મરણમાત્રથી આર્તિ જાય ॥૮॥
 શ્રીભાગવતગૂઢાર્થ પ્રકટાય ।
 સાકાર બ્રહ્મનો વાદ સ્થપાય ॥૯॥
 વેદપારગ ચૌદ ભુવન કહેવાય ।
 માયાવાદનિરાકૃત સહુ ભલી ગાય ॥૧૦॥
 સર્વવાદિનિરાસ કીધા તે લખાય ।
 ભક્તિમાર્ગ સરસ કમલ વિકસાય ॥૧૧॥
 સ્ત્રીશૂદ્રાદિકને ઉદ્ધારવા સમર્થ ।
 જેના સાધનબલથી ન થાય અર્થ ॥૧૨॥
 અંગીકારમાત્ર થી સર્વસ્વકીયે ।
 કીધા શ્રીગોપીજનપતિને પ્રિયે ॥૧૩॥
 અંગીકાર કરે મર્યાદાનુસાર ।
 મહાકરુણાવન્ત સમર્થ અપાર ॥૧૪॥
 બહાલો અદેયદાન દેવા ને ચતુર ।
 મહાઉદાર ચરિત્ર કરે બહુરૂપ ॥૧૫॥
 લીલા દેખાડી પ્રાકૃત ને જેહ ।
 તે મિથે મોહ્યા સુરરિપુ તેહ ॥૧૬॥

વૈશ્વાનર શ્રીવલ્લભ છે નામ ।
 વહાલો સુન્દર રૂપ સ્વજનહિતકામ ॥૧૭॥
 કૃષ્ણભક્તિ કરે જનશિક્ષાકાજ ।
 આપે અખિલ ઈષ્ટ શ્રીવલ્લભરાજ ॥૧૮॥
 સર્વલક્ષણથી સંપન્ન વિવેક ।
 શ્રીકૃષ્ણજ્ઞાનદાતા ગુરુ એક ॥૧૯॥
 પોતાના આનન્દ થકી બહુપુષ્ટ ।
 એનાં કમલપત્રશાં નેત્ર સન્તુષ્ટ ॥૨૦॥
 કૃપાદષ્ટિની વૃષ્ટિથી હરખ્યા મન ।
 તે દાસદાસીપ્રિયપતિને અનન્ય ॥૨૧॥
 રોષદષ્ટિ કરે ભક્તિ શત્રુ પ્રજાલ ।
 ભક્ત સેવંતા સુખ સેવા રસાલ ॥૨૨॥
 જીરે ભક્તિ બિના નહીં સેવા સાધ્ય ।
 તે કારણથી કહીયે દુરારાધ્ય ॥૨૩॥
 જેના ચરણસરોજ દુર્લભ દર્શાય ।
 તેના ઉચ્ચપ્રતાપ ત્રિલોક કહેવાય ॥૨૪॥
 વચનામૃત કરી પૂર્યા સેવક ના અર્થ ।
 શ્રીભાગવત અમૃતમથનસમર્થ ॥૨૫॥
 તેનો સાર કહીયે વ્રજસુન્દરી નો ભાવ ।
 તે પરિપૂર્ણ છે દેહ ભરાવ ॥૨૬॥
 સાન્નિધ્યમાત્રથી કરે દાન કૃષ્ણપ્રેમ ।
 ભક્તિમુક્તિ તે દેવાનું એઉને નેમ ॥૨૭॥
 એક રાસલીલામા મનું તાન ।
 પ્રભુ કૃપા કરીને કરે કથાનું દાન ॥૨૮॥
 વહાલે વિરહના અનુભવને હેતે કાજ ।
 સર્વત્યાગ જણાવ્યો શ્રીવલ્લભરાજ ॥૨૯॥
 ઉપદેશ કર્યો ભક્તિમાર્ગ આચાર ।
 લોક માંહે કર્યો કર્મમાર્ગ પ્રચાર ॥૩૦॥
 વેદશાસ્ત્ર કહ્યાં યજ્ઞાદિક દાન ।
 તેનું ફલ મર્યાદાભક્તિ નિદાન ॥૩૧॥
 પ્રભુ પૂર્ણાનન્દ છે પૂરણકામ ।
 સરસ્વતીના પતિદેવ ઈશ અભિરામ ॥૩૨॥
 વહાલે સદૃશ કહ્યાં પુરુષોત્તમ નામ ।
 નિજજનને આશ્રયનું છે ધામ ॥૩૩॥

ભક્તિમાર્ગની રીતે કરવા ઉપદેશ ।
 બહુગ્રન્થ કરીને ટાળ્યો સંશયનો લેશ ॥૩૪॥
 જેને પામવાને છોડ્યા પ્રાણથી પ્રિયે ।
 એવા ભક્તસમાજ બિરાજશ્રીએ ॥૩૫॥
 આપ સાધન કરે નિજ દાસને કાજ ।
 એવા સમર્થ શ્રીવલ્લભ મહારાજ ॥૩૬॥
 કરવા ભક્તિપ્રચાર ભૂતલ માંહી ।
 વશ કીધાં પિતા થઈને ગ્રહી બાંહી ॥૩૭॥
 સર્વ સામર્થ્ય ધર્યું પોતાને વંશ ।
 ગર્વ દૂર કરી ટાળ્યો સંશયનો અંશ ॥૩૮॥
 પ્રભુ પતિવ્રતાના પતિ સાક્ષાત્ ।
 દીયે યહ લોક પરલોક દાન વિખ્યાત ॥૩૯॥
 જેના અન્તઃકરણ છે ગૂઢ અપાર ।
 અંગીકૃત ને જણાવ્યો મનનો વિચાર ॥૪૦॥
 ઉપાસનાદિક માર્ગ જે અન્ય ।
 તેનો મોહ ટાલીને કીધા સેવક અન્ય ॥૪૧॥
 કર્યો નિશ્ચય જે ભક્તિ સર્વથા વિશેષ ।
 કીધો શરણમાર્ગનો જુવો ઉપદેશ ॥૪૨॥
 શ્રીકૃષ્ણની મનની જાણે વાત ।
 લીલાકુંજબિહારી પરિપૂરણ ગાત ॥૪૩॥
 કથારસમગ્ન સદા છે ચિત્ત ।
 વિસર્યું સૌ તે થકી બીજું વિત્ત ॥૪૪॥
 પ્રિય છે ઘણું વ્રજને વ્રજનો વાસ ।
 કરે પુષ્ટિલીલા એકાન્ત વિલાસ ॥૪૫॥
 કરે ભક્તેચ્છા પરિપૂરણ દાન ।
 નહીં નિજલીલાનું કોઈને જ્ઞાન ॥૪૬॥
 અતિ મોહિત જેનું શીલ ઘણું ।
 નહિં લોક વિષે આસક્તિ અણું ॥૪૭॥
 નિજભક્ત વિષે આસક્તિ છે એક ।
 પ્રભુ પાવન ક્રિયા પતિત અનેક ॥૪૮॥
 જે કરે પોતાના ગુણનું ગાન ।
 તેના હૃદયકમલ રહેવાનું સ્થાન ॥૪૯॥
 નિજ યશરૂપી અમૃતલહરી ।
 તેથી ભીંજવી સર્વરસ વાસના હરિ ॥૫૦॥
 પ્રભુ પોતે સર્વ થકી છે પર ।
 ન કરે તુલ્યતા કોઈ અવર ॥૫૧॥
 લીલારસ અમૃતતરંગ બહુ ।
 ભીંજવ્યાં છે ભક્ત શરીર સહુ ॥૫૨॥

રુચિ આપે ગિરિગોવર્ધનવાસ ।
 તે લીલા માં છે અતિશય ઉલ્લાસ ॥૫૩॥
 કરે યજ્ઞ ભોગ ને યજ્ઞકર્મ ।
 આપે અર્થ કામ ને મોક્ષ ધર્મ ॥૫૪॥
 પ્રભુ સત્ય વચન છે ત્રિગુણાતીત ।
 નીતિ ચતુરાઈ છે અતિ અગણિત ॥૫૫॥
 કરવા પોતાની કીર્તિ પ્રકાશ વ્રત ।
 કર્યું વ્યાસસૂત્રનું નૂતન ભાષ્ય ॥૫૬॥
 અતિ તુચ્છ તૂલ જે માયાવાદ ।
 કરી ભસ્માગ્નિ સ્થાપ્યો બ્રહ્મવાદ ॥૫૭॥
 અપ્રાકૃત ભૂષણ ની અતિ કાંતિ ।
 હંસતા મુખ શોભે છે બહુ ભાંતિ ॥૫૮॥
 પ્રભુ ત્રીન લોકના ભૂષણ સાર ।
 પ્રકટ્યા ઘરણીનું ભાગ્ય અપાર ॥૫૯॥
 પ્રભુ સુન્દરતા છે અતિશય અનૂપ ।
 કેમ વર્ણન કરી શકું એ સ્વરૂપ ॥૬૦॥
 સો માંગે છે પોતાના જન ।
 ચરણારબિદના રજ જે ધન ॥૬૧॥
 એ કહ્યાં એકસોને આઠે નામ ।
 શ્રીવલ્લભનામ આનંદનું છે ધામ ॥૬૨॥

વલણ

જે કોં શ્રદ્ધા કરી નિત્ય ગાયેરે ।
 તેનું મન પહેલું સ્થિર થાયેરે ॥૬૩॥
 અઘરામૃતની સિદ્ધિ પામેરે ।
 તેમાં સંશયનું નહીં નામેરે ॥૬૪॥
 એ પામ્યા વિના મોક્ષ છે હીનરે ।
 તેમાં ફલમાં મુક્તિ છે લીનરે ॥૬૫॥
 તેથી સર્વોર્ગિમજપ કરવો રે ।
 શ્રીકૃષ્ણરસે મન ભવોરે ॥૬૬॥
 શ્રીવિટ્ઠલ ઉચ્ચરિત એ નામ રે ।
 જે ગાય પૂરે તેના કામરે ॥૬૭॥
 તેનો જન્મ સફલ કરી લેખેરે ।
 તે "શ્રીવ્રજભૂષણના" સુખ દેખેરે ॥૬૮॥



अर्थ श्रीसर्वोत्तम स्तोत्र भाषा

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

जयती आनंदरूप परमानन्द कृष्णमुख कृपानिधि देवि उद्धारकारी ।
स्मृतिमात्र सकल आरति हरन गूढ गुण भागवत अर्थ लीनों विचारी ॥१॥

एक साकार परब्रह्म स्थापन करन चारहु वेद के पारगामी ।
हरन मायावाद बहुवाद नाशकरि भवितपथ कमल कों दिवस स्वामी ॥२॥

शूद्र ललना लोक उद्भरन सामर्थ गोपिकाधीशकृत अंगिकारी ।
वल्लभी कृत मनुज अंगीकृत जनन पे धरन मर्याद बहु करुणधारी ॥३॥

जगत व्यापक दान करत सब वस्तु को चरित जाके सकल अति उदारी ।
आसुरीजनन मोहन करन हेतु यह व्याज सों प्रकृति इव रूपधारी ॥४॥

अग्निनि अवतार वल्लभ नाम शुभ रूप सदा सज्जनन हित करत जानी ।
लोक शिक्षा करन कृष्ण की भवितकरि निखिल जग इष्ट के आप दानी ॥५॥

सर्व लक्षणनि सम्पन्न श्रीकृष्ण को ज्ञान प्रभु देत गुरु रूप धारी ।
सदा स्वानन्द तुंदिल पद्मदल सरिस नयन जुग जगत सन्ताप हारी ॥६॥

कृपा करि दृष्टि की वृष्टि वर्धित किए दासिका दास पति परमप्यारे ।
रोष दृग करन मुरछित भवित द्वेष हरन भवत जन वरन सेवित दुलारे ॥७॥

भवतजन मुखसेव्य अति दुराराध्य दुर्लभ कंजपद उग्र तेज धारी ।
वाक्य रस करन पूरन सकल जनन मन भागवत पयसिन्धु मथन कासी ॥८॥

सार ताको जानि रास वनितान के भाव सो सकल पूरित सुभेसा ।
होत सनमुख देत प्रेम श्रीकृष्ण को अविमुवित देत लखि वहत देसा ॥९॥

रासलीलैक तात्पर्यमय रूप मुनि देत करि कृपा बहु कथा ताकी ।
त्यागि सब एक अनुभव करहु विरह को यहै उपदेश बानी सुनाही ॥१०॥

भवित आचार उपदेश नित करत पुनि कर्म मारग प्रवर्तन सुकीनो ।
सदा यागादि में भवित मारग एक करहु साधनहि उपदेश दीनो ॥११॥

पूर्ण आनन्दमय सदा पूरन काम वाक्यपति निखिल जग विपुध भूपा ।
कृष्ण के सहस शुभनाम निज मुख कहे भवित पर एक जाको सुरूपा ॥१२॥

भवित आचार उपदेश हित शास्त्र के वाक्य नाना निरूपन सुकीने ।
भवतजन सदा धेरे राहत जिनन निज प्रेम हित प्राण प्रन त्यागि दीने ॥१३॥

निज दास अर्थ साधन अनेकनि किए जदपि प्रभु आप सब शक्ति कारी ।
एक भुव लोक प्रचलित करन भवितपथ कियो निज वंश पितु रूप धारी ॥१४॥

निज विमल वंश में परम माहात्म्य प्रभु धर्यो सब जगत संदेहहारी ।
पतिव्रता पति पारलौ किंकौहिक दान करत अधिकार जन को विचारी ॥१५॥

गूढ मति हृदय निज अन्य अनभवत कौ सकल आशय आपु कहत प्यारे ।
 जग उपासन आदि मारगादीन में मुग्धजन मोह के हरन वारे ॥१६॥
 सकल मारगन सौ भवित मारग बीच अति विलक्षण सु अनुभवहि मानै ।
 पृथक कहि शरण को मार्ग उपदेश करि कृष्ण के हृदय की बात जानै ॥१७॥
 प्रतिक्रिा गुप्त लीला नव निकुंज की भरि रही चित्त में सदा जाके ।
 सोई कथा स्मरण करि चित्त आक्षिप्त वत भूलिगई सकल सुधि आए ताके ॥१८॥
 ब्रज प्रिय ब्रजवास अतिहि प्रिय पुष्टि लीला करन सदा एकान्त चारी ।
 भवतजन सकल इच्छा सुपूरन करन अतिहि अज्ञान लीला विहारी ॥१९॥
 अतिहि मोहन निरासवतजन भवत मात्रा सवत पतितपावन कहाई ।
 जसगान करत जे भवत तिनके हृदय कमल में जाको सदाई ॥२०॥
 स्वच्छ पीयूषलहरी सदृश निज जसनि तुच्छ करि अन्य रस दिये बहाई ।
 पर रूप कृष्ण लीला अमृतरस अखिल जन सींचि प्रेम में दिये भिजाई ॥२१॥
 सदा उत्साह गिरिराज के वाप में सोई लीला प्रेम पूर गाता ।
 यज्ञ हवि हरत पुनि यज्ञ आपुहि करत अति विसद चारहु फल के दाता ॥२२॥
 शुभ प्रतिज्ञा सत्य जगद् उद्धार की प्रकृति सौ दूरि बहु नीति ज्ञाता ।
 कीर्ति वर्द्धन करी सूत्र को भाष्य करि कृष्ण इक तत्व के ज्ञान दाता ॥२३॥
 तूलमायावाद दहन हित अग्नि वपु ब्रह्म को बाद जग प्रगट कीनो ।
 निखिल प्राकृत रहित गुनन भूषित सदा मंद मुसुकानि मन चोरि लीनो ॥२४॥
 तीनहुँ लोक भूषण भूमिभाग्य वर सहज सुन्दर रूप वेद सारं ।
 सदा सब भक्त प्रार्थित चरन कमल रज धन रूप नौ मि लक्ष्मण कुमारं ॥२५॥
 एकसत आठ ए नाम अभिराम नित प्रेम सौ जे जगत माहि गावै ।
 परम दुरलभ कृष्ण अधर अमृत पान स्वाद करि सुलभ ते सदा पावै ॥२६॥
 नाम आनन्द निधि वल्लभाधीश को विट्ठलेश्वर प्रगट करि दिखायो ।
 छोडि साधन सकल एक यह नहि कै परम संतोष "हरिचन्द" पायो ॥२७॥
 इति श्रीमद् विट्ठलनाथ चरण पंकज पराग लेपनापसारित निखिल कल्मष
 हरिचन्द्र कृत भाषान्तरित कीर्तन स्वरूप श्रीसवोत्तम स्तोत्रम् समाप्तिगमत् ।



શુ. તૃતીય પીઠાધીશ્વર
નિ. લી. ગોસ્વામિશ્રીવ્રજભૂષણલાલજી
મહારાજશ્રી-કાંકરોલી
ના
પુણ્યસંકલ્પનું પ્રતીક-
"શ્રીવ્રજભૂષણ સેવાનિધિ ટ્રસ્ટ : વડોદરા"
પ્રમુખ ઉદ્દેશો
શ્રીપૂર્ણપુરુષોત્તમનું રૂપ + નામ સેવા

- "ગ્રન્થપ્રકાશન યોજના" દ્વારા વિશ્વધર્મ શુદ્ધાદ્વૈત સમ્પ્રદાય-ભારતીય સંસ્કૃતિના સિદ્ધાંત-ભાવના-પ્રેરક સાહિત્યનું પ્રકાશન-વિતરણ .
- "કેન્દ્રીય પુસ્તકાલય" સંચાલન દ્વારા પ્રાચીન-અર્વાચીન, મુદ્રિત-અમુદ્રિત તેમજ હસ્તલિખિત અપ્રાપ્ય ગ્રન્થો તથા હસ્તાક્ષરોનો સંગ્રહ .
- "સંશોધન કેન્દ્ર" સંચાલન દ્વારા બહુમૂલ્ય નૂતન-પુરાતન સાહિત્ય-સામગ્રીનું સંશોધન, સમ્પાદન-વિશિષ્ટ જીવનચરિત્ર, પરંપરાગત પ્રસંગોની શોધખોળ - ગુજરાતી, હિન્દી, અંગ્રેજીમાં ભાષાંતર, વ્યાખ્યા, વિવેચન .
- "સંગ્રહાલય" દ્વારા સાહિત્ય, સંગીત, કલા : કીર્તન, ચિત્રો વિગેરેના નમૂના, આલેખન, ફિલ્મ, ટેપ, રેકોર્ડ, દસ્તાવેજ, કલાકૃતિઓ નું સંકલન-પ્રદર્શન .
- "સ્મારકભવન" સભાખંડ વગેરે દ્વારા શ્રી સર્વોત્તમ ના ભાવનાત્મક ૧૦૮ નામ, નિધિસ્વરૂપ, આચાર્યગણ, અષ્ટસખા, વિશિષ્ટ સામ્પ્રદાયિક વૈષ્ણવ, સ્થલાદિ-ચિત્રિત .

(બેઠકમંદિર, કેવડાબાગ - વડોદરા)